रंगमंच यह जगत्

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

यह संसार रंगमंच के समान है। मानव यहां आकर अपने जीवन रूपी अभिनय को करके संसार से विदा हो जाता है। इसलिए कहा गया है कि–

रंगमंच यह जगत् है, करम खेलावन हार।

नाना रूप बनाय के चेतन खेवन हार।।

नाटक में हर पात्र स्टेज पर आकर अपना अभिनय करता है और स्टेज से चला जाता है। जिसका जो कार्य निर्धारित है वह उतना ही अभिनय करता है। यह संसार भी रंगमंच है। नाटक के पात्र की तरह मानव यहां आकर अपना कर्मरूपी अभिनय करता है। आयुष्य कर्म की समाप्ति के बाद जीव यहां से चला जाता है। कठपुतली को उसका संचालक जिस प्रकार से संचालित करता है वैसा ही वह कठपुतली अपना अभिनय करती है।

इस संसार में मानव कर्म भोगकर और कुछ नये कर्म का संस्कार लेकर चला जाता है। जैसा कार्य करता है वैसा वह फल भी भोगता है। इस संसार में सुख–दुःख देने वाला कोई दूसरा नहीं बल्कि अपना कर्म ही है। कर्म जब पुण्योदय में आता है तो पुण्य कर्म का फल प्राप्त होता है। जब पापोदय का समय आता है तो दुःख की प्राप्ति होती है। कर्म आठ प्रकार के हैं। यह द्रव्य कर्म है। जो जैसा कर्म बीज बोया है उसे वैसा ही फल प्राप्त हो रहा है। शरीर जन्म–जन्मान्तर के संस्कार को साथ लेकर चलता है। कर्म जड़ है और कराने वाला चेतन है। चेतन और जड़ का सम्बन्ध विभाव पैदा करता है। कर्म की गति बहुत विचित्र है। इसे कोई जान नहीं पाता। कर्मों में चार घाति हैं और चार अघाति कर्म हैं।

जीवों के उत्थान और पतन में कर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कर्मवाद का यह सिद्धांत है कि जो जैसा कर्म करता है उसको उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। कर्मों का फल भोगे बिना संसार से मुक्ति नहीं मिलती। संसार में आवागमन रोकने के लिए कर्म बीज को नष्ट करना बहुत आवश्यक है। जिसने अपने कर्मों को नष्ट कर दिया है, उसका संसार में

आवागमन रूक जाता है। जिस प्रकार दग्ध बीजों में से पुनः अंकुर फूटने की शक्ति नहीं रहती उसी प्रकार कर्मरूपी बीजों के नष्ट हो जाने पर उनमें भवरूपी अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रहती। जब कर्म बीज नष्ट हो जाते हैं तो आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होकर लोकाग्रह में विराजता है। जीव की शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक शुभाशुभ क्रिया द्वारा या मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग इन आश्रवों से अनुगत आत्मा द्वारा जो किया जाता है वह कर्म है। मुख्यतः कर्म का अर्थ प्रवृत्ति है। कर्म से आकृष्ट पुद्गल भी कर्म कहलाते हैं। आत्मा और कर्म का संबंध क्रिया के द्वारा होता है।

कर्म की आठ मूल प्रकृतियां हैं। इन मूल प्रकृतियों को घाती और अघाती दो भागों में बांटा गया है। घाती कर्म वे कर्म हैं, जो आत्मा के सहज गुणों का घात करते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय घाती कर्म कहलाते हैं। घाती कर्मों को सर्वघाती और देशघाती दो भागों में विभक्त किया गया है। सर्वघाती आत्मा के स्वाभाविक गुणों को पूरी तरह नष्ट कर देते हैं और देश घाती आत्मा के आंशिक गुणों का घात करते हैं। जैसे बादल, चन्द्रमा और सूर्य के स्वाभाविक प्रभाव को ढ़ककर उनके प्रकाश को बाहर नहीं आने देता उसी प्रकार घाती कर्म आत्मा के स्वाभाविक गुणों को प्रकट नहीं होने देते।

जो कर्म आत्मा के मुख्य या स्वाभाविक गुणों का घात नहीं कर पाते, वे अघातिकर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म हैं। जिन कर्मों के प्रभाव से आत्मा निजानन्द को भूलकर सांसारिक सुख–दुःख रूप फलों का अनुभव करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। आयुष्य कर्म के द्वारा आत्मा चारों गतियों में– नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव गतियों में भ्रमण करता रहता है। आयुष्यकर्म बेड़ी के समान है। जिस प्रकार काठ की बेड़ी में पड़ा हुआ मनुष्य उसको तोड़े बिना निकल नहीं सकता, वैसे ही आयुष्यकर्म को भोगे बिना जीव एक भव से दूसरे भव में नहीं जा सकता। जिसके प्रभाव से जीव शुभ या अशुभ शरीर की रचना, प्रभाव आदि प्राप्त करता है, उसे नामकर्म कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं– शुभ और अशुभ। शुभ नाम के उदय से व्यक्ति सुन्दर, आदेय वचन, यशस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला होता है और अशुभनाम के उदय से इसके विपरीत होता है। जिस कर्म के द्वारा जाति, कुल आदि की उच्चता, निम्नता होती है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। गोत्र कर्म दो

प्रकार का है– उच्च गोत्र और निम्न गोत्र। ये क्रमशः उच्चता–निम्नता, सम्मान और असम्मान के निमित्त बनते हैं।

जीव और कर्म का संबंध अनादि है। जीव चेतन है और कर्म अचेतन। इन दोनों में सीधा संबंध नहीं है। जीव अपनी प्रवृत्ति से ही पुद्गल का आकर्षण करता है। जब वह शुभ प्रवृत्ति में संलग्न रहता है, तब शुभ पुद्गल आत्मीकृत होते हैं, जो पुण्य कहलाते हैं। जब वह अशुभ प्रवृत्ति में संलग्न रहता है, तब अशुभ पुद्गल आत्मीकृत होते हैं, जो पाप कहलाते हैं। आत्मा प्रमत्त दशा में अपने अशुभ उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार तथा पराकर्म से कर्म प्रायोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर कर्मों से बद्ध हो जाता है। आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता और आत्मा ही कर्मों का विकर्त्ता है। इसलिए बंध और मोक्ष आत्मकर्तृत्व सम्मत है।